ISSN 2348-3857

कौटिलीय अर्थशास्त्र में सामाजिक न्याय: एक विश्लेषण

सुशीला कुम्हार
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

वर्तमान विश्व के समक्ष सामाजिक न्याय ऐसी धुरी है जिसके चतुर्दिक सामाजिक व्यवस्था का आंकलन किया जाता है। मनुष्य के एक सामाजिक प्राणी होने के फलस्वरूप समाज में उसके प्राकृतिक न्याय की स्थापना को सुनिश्चित किया जाना, न्याय के मूल हेतु हैं। प्राचीन भारतीय चिन्तन के प्रमुख नीति ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' के संदर्भ में सामान्यत: यह विभ्रम उत्पन्न किया जाता रहा है कि यह केवल धार्मिक ग्रन्थ है, उसमें किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं है अर्थात् निरंकुश राज्य का पक्ष-पोषक है और इस निरंकुश राज्य में प्रजा का शोषण एवं उसमें भेदभाव देखा गया है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक न्याय के मूल सिद्धान्त के विपरीत तथ्य देखने को मिलते हैं।कौटिल्य ने वर्ण व्यवस्था को सामाजिक संगठन के सिद्धान्त तक सीमित रखा है। मनु के दृष्टिकोण के विपरीत अर्थशास्त्र में वर्णों पर आधारित भेदभाव का प्रतिपादन सामान्यत: नहीं किया गया है। विभिन्न राजकीय प्रशासनिक व सामाजिक गतिविधियों में कौटिल्य सामान्यत: चारों वर्णों के सदस्यों को उनकी योग्यता के अनुसार समान अवसर प्रदान करने का समर्थन करते हैं। कौटिल्य ने शूद्रों को योग्य होने पर मंत्री या न्यायधीश के रूप में नियुक्त किये जाने का समर्थन किया है जो सामाजिक न्याय के अनुकूल है। प्रस्तुत शोध लेख में यह आंकलन करने का प्रयास किया गया है कि क्या कौटिलीय अर्थशास्त्र में सामाजिक न्याय सम्बन्धी सिद्धान्तों का पक्ष-पोषण किया गया है या इससे पृथक् सिद्धान्तों का निरुपण किया गया है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज से उसका अभिन्न सम्बन्ध होता है तथा समाज में व्याप्त नियमावली द्वारा उसे जीवन-यापन करना पड़ता है। समाज में विभिन्न प्रवृत्ति के लोगों के रहने से उनके मध्य जहाँ एक ओर सद्भाव रहता है वहीं दूसरी ओर वाद-विवाद भी दिखाई देते हैं तथा आपसी सहयोग के अभाव में संतुलित समाज की व्यवस्था नहीं पनप सकती है। अत: आपसी समन्वय ही उचित विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार एक सुव्यवस्थित समाज व राज्य का प्रमुख प्रयोजन अपनी सीमाओं के अन्तर्गत सामाजिक न्याय की स्थापना व रखरखाव होता है। सामाजिक न्याय एक आदर्शमूलक अवधारणा है जो यह अभिव्यक्त करती है कि किसी भी अवसर पर जाति धर्म, वर्ण, लिंग या अन्य आधार पर किसी व्यक्ति के साथ भेदभाव न किया जाये तथा समाज में उसकी गरिमा को सुनिश्चित कर उसे पूर्ण विकास के अवसर उपलब्ध करवाये जायें। व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण को रोका जाये जिसके फलस्वरूप समाज के प्रत्येक व्यक्ति को मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति हो सके।

अर्थशास्त्र का सम्यक् व निष्पक्ष अनुशीलन इस भ्रांत धारणा को नकारने के लिए पर्याप्त आधार प्रस्तुत करता है कि भारतीय मनीषियों ने राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ में किसी स्पष्ट एवं व्यवस्थित दृष्टिकोण का प्रतिपादन नहीं किया।[1] मनु और कौटिल्य की विचार-परम्परा में बहुत बड़ी खाई नहीं है क्योंकि वे प्राय: एक ही सभ्यता के प्रतिनिधि हैं। अन्तर यह है कि मनु 'धर्म' को सर्वोपरि स्थान देकर राज्य को धर्म के अधीन कर देते हैं, जबकि 'अर्थशास्त्र' के रचयिता कौटिल्य 'अर्थ' को सर्वोच्च स्थान देते हैं। के.पी. जायसवाल के अनुसार-कौटिल्य के विचार से अर्थ का तात्पर्य ऐसी भूमि या क्षेत्र जिस पर मनुष्य बसे हों।[2] अर्थशास्त्र वह संहिता है, जो भूमि अर्जित करने और उसकी अभिवृद्धि करने के उपायों का निरुपण करती है।

आधुनिक युग में 'अर्थशास्त्र' शब्द का प्रयोग 'इकॉनोमिक्स' (Economics) के अर्थ में करते हैं, परन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र का विवेच्य विषय 'पॉलिटिक्स' (Politics) अर्थात् राज्यशास्त्र या राजनीतिशास्त्र है। कौटिल्य अर्थशास्त्र केवल राजनीतिक

चिन्तन का सारांश ही प्रस्तुत नहीं करता, अपितु व्यावहारिक प्रशासन के मार्गदर्शक के रूप में भी विख्यात है।[3] अर्थशास्त्र में सामाजिक न्याय के ध्येय को ध्यान में रखते हुए प्रजा के नैतिक व भौतिक कल्याण के लिए धर्म के अनुसार इसके व्यवहार के नियमन को प्राथमिकता दी गयी है। यदि राज्य इस दायित्व की पूर्ति निष्ठा व मर्यादा के साथ नहीं करता तो उसकी कोई सार्थकता नहीं है। अर्थशास्त्र में राज्य के कार्यक्षेत्र को अत्यन्त विस्तृत माना गया है। मानवीय जीवन से सम्बन्धित समस्त पक्षों नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, आदि को राज्य के कार्यक्षेत्र की परिधि में माना गया है। अर्थात् मानव के लौकिक जीवन के समस्त पक्षों को राज्य के कार्य क्षेत्र में सम्मिलित करने का तात्पर्य है प्रत्येक मानव के प्रत्येक पक्ष के हितार्थ कार्य करना जिसके फलस्वरूप सामाजिक न्याय स्वत: स्थापित हो जायेगा। अर्थशास्त्र में प्रजा के उत्थान एवं उसके सुव्यवस्थित जीवन निर्वाह के लिए राज्य की गतिविधियों को क्षेत्र व्यापार, वाणिज्य से लेकर सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित व वैदेशिक सम्बन्धों के सुचारु रूप से संचालन तक विस्तृत रखा है।[4]

इस ग्रंथ में न्याय व्यवस्था के संगठित स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। न्याय की एक स्पष्ट धारणा प्रस्तुत करने के साथ-साथ इसमें न्यायिक प्रशासन के विभिन्न पक्षों का विस्तृत चित्रण हुआ है।[5] अर्थशास्त्र में सामाजिक न्याय के प्रयोजनार्थ न्यायिक शक्ति के सम्व्यवहार में निष्पक्षता को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसमें न्यायिक शक्ति को राज्य की सामान्य कार्यपालिका शक्ति से पृथक् किये जाने का समर्थन किया गया है। यद्यपि इस ग्रंथ में यह स्वीकार किया गया है कि किसी भी राज्य में शासक या राजा ही सर्वोच्च न्यायिक शक्ति का प्रतीक होता है तथापि राजा को किसी शक्ति का रूप नहीं दिया गया, अपितु राजा से अनिवार्यत: यह अपेक्षा की गयी है कि वह उस शक्ति का संस्थागत नीति से ही सम्व्यवहार करे।[6]

अर्थशास्त्र में वर्णित निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर स्पष्ट होता है कि इस ग्रंथ में सामाजिक न्याय को स्थापित करने पर बल दिया गया है-

वर्ण धर्म के माध्यम से सामाजिक न्याय

कौटिल्य अर्थशास्त्र अपने युग की सामाजिक परिस्थितियों के प्रसंग में लिखा गया ग्रंथ है और इस रूप में यह अपने युग के सामाजिक चिन्तन का प्रतिनिधि ग्रंथ है। कौटिल्य ने प्राचीन भारतीय परम्परा को स्वीकारते हुए समाज के संगठन का आधार वर्ण व्यवस्था को माना है। कौटिल्य ने भी मनु की भाँति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र का कर्म क्रमश: अध्ययन-अध्यापन, प्रजा का पालन, कृषि व व्यापार तथा शूद्र का कर्म प्रथम तीन वर्णो की सेवा करना बताया है।[7] यद्यपि कौटिल्य ने चारों वर्णो के अस्तित्व को परस्पर पृथक् माना है और वर्ण-संकरता का विरोध किया है तथा अन्य वर्णो की तुलना में ब्राह्मण के विशेषाधिकार भी स्वीकारे हैं, किन्तु समस्त विवरण में मनु जैसी कट्टर अनुदारता नहीं है और उनकी वर्ण-व्यवस्था गंभीर सामाजिक असमानता को भी प्रोत्साहित नहीं करती है। एम.वी. कृष्णाराव ने कौटिल्य की वर्ण व्यवस्था की विशेषता का वर्णन करते हुए कहा है कि कौटिल्य ने ब्राह्मणों को सामाजिक वरिष्ठता देते हुए भी शूद्रों को ब्राह्मण के समान कुछ व्यावहारिक अधिकार प्रदान किये हैं जो उनके पूर्व में कभी नहीं दिये गये।[8] बन्धोपाध्याय का मत है कि, कौटिल्य स्वयं ब्राह्मण थे तथा इस जाति के सामाजिक विशेषाधिकारों में विश्वास करते थे, किन्तु उन्होंने समाज के अन्य वर्गो के हितों को भी स्वीकारा।[9] उनका विचार था कि साधारण जन मात्र दूसरों के हितों के लिए नहीं जीता, अपितु चौथे वर्ण के सदस्य ही सामुदायिक जीवन के आधार हैं और आर्थिक एवं सामाजिक विकास में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इस प्रकार उनका तत्कालीन वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में दृष्टिकोण उदार था।

अत: कौटिल्य के द्वारा शूद्र को सम्पत्ति का अधिकार देना तथा उसे आर्यों के सम्पूर्ण समाज का सामान्य एवं अनिवार्य अंग मानना, उनके प्रति सामाजिक न्याय को परिलक्षित करता है।

महिलाओं के प्रति विरोधाभासी दृष्टिकोण

कौटिलीय अर्थशास्त्र में लैंगिक न्याय के आंकलन से स्पष्ट है कि इसमें महिलाओं के प्रति विरोधाभासी दृष्टिकोण को अपनाया गया है। जहाँ एक ओर स्त्रीधन का समर्थन परिस्थितिवश पुनर्विवाह का अधिकार प्रदान कर महिलाओं की सुदृढ़ स्थिति को प्रकट किया गया है वहीं इसके विपरीत महिला को मात्र भोग वस्तु के रूप में प्रस्तुत कर उसका अपमान करना न्यायोचित नहीं है। अर्थशास्त्र में महिलाओं के संदर्भ में यह विवरण प्रस्तुत किया गया है कि यदि कोई पुरुष समर्थ होते हुए भी अपने बच्चों, पत्नी, माता-पिता तथा परिवार की समस्त जिम्मेदारियों का वहन न करे तो वह दण्डनीय होगा। विशेष रूप से माता का भरण-पोषण एवं उसकी रक्षा करनी चाहिए।[10] उपयुक्त विवरण लिंग आधारित सामाजिक न्याय का पक्षधर है।

स्त्रियों के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में यह विवरण दिया गया है कि जिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र पुत्रहीन स्त्रियों के पति कुछ समय के लिए विदेश गये हो, वह एक वर्ष तक तथा पुत्रवती

स्त्रियाँ अधिक समय तक इन्तजार करें। पत्नी के भरण-पोषण के प्रयोजन से विदेश गये हुए पति की पत्नी को दुगुने समय तक, परन्तु भरण-पोषण न करने वाले पति की पत्नी को पहले विवाह में प्राप्त स्त्रीधन को वापस देकर दूसरा विवाह करने की अनुमति प्रदान की गयी है।[11] यहाँ कौटिल्य ने महिलाओं को पुनर्विवाह का अधिकार देकर समाज में लिंग आधारित न्याय को प्रतिस्थापित किया है।

अर्थशास्त्र में स्त्रियों द्वारा दाम्पत्य नियमों का उल्लंघन करने पर उन्हें दण्डनीय माना है और अभिव्यक्त किया है ऐसा करने पर उन्हें प्रथमत: नम्रतापूर्वक सभ्यता सिखायें, यदि इससे कार्य न सधे तो उसे बाँस की खप्पची एवं रस्सी द्वारा मारना चाहिए। यदि फिर भी वह राह पर न आवे तो उन्हें दण्ड पारुष्य तथा वाक्पारुष्य द्वारा दण्डित किया जाना चाहिए।[12] इसी प्रकार पुरुष को भी दण्ड का भागीदार माना है।[13] अत: स्त्री-पुरुष हेतु समान दण्ड का प्रावधान सामाजिक न्याय का परिचायक है।

अर्थशास्त्र में स्त्रीधन के संदर्भ में यह स्पष्ट किया गया है प्रथम चार प्रकार के विवाह में माता-पिता व बन्धुजनों द्वारा भेंट स्वरूप दिया गया धन व वस्त्राभूषण आदि को स्त्रीधन के रूप में स्वीकार किया गया है। स्त्रीधन दो प्रकार के बताये गये हैं-वृत्ति, व आवध्य। वृतिधन से तात्पर्य है स्त्री का वह धन जो उसके नाम से बैंक आदि में जमा है, जिसकी राशि कम-से-कम 2000 रुपये तक होनी चाहिए तथा आवध्य धन-गहना, जेवर या अन्य आभूषण आवध्य धन कहलाता है, जिसकी तादाद का कोई नियम नहीं है।[14] यदि कोई स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात् स्वेच्छा से विवाह करती है तो स्त्रीधन की भागीदारी नहीं होगी परन्तु धर्मानुसार व परिवार की सहमति से विवाह करती है तो वह स्त्रीधन की अधिकारी है। उसी प्रकार पति की मृत्यु के पश्चात् स्वेच्छा से पुनर्विवाह करने वाली स्त्री पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी नहीं है परन्तु यदि वह धर्मपूर्वक जीवन-व्यतीत करना चाहती है तो वह मृत पति के उत्तराधिकार को भोग सकती है।[15]

उपर्युक्त विवरण का सामाजिक न्याय के संदर्भ में विश्लेषण किया जाये तो यह स्पष्ट होता है, यदि वह स्वेच्छा से पुनर्विवाह करती है तो उसे सम्पत्ति से वंचित कर दिया जायेगा जो न्यायोचित नहीं है। उसके द्वारा पुनर्विवाह करना चुनौतीपूर्ण है। परन्तु यह व्यवस्था इसलिए की गयी है क्योंकि पुनर्विवाह के पश्चात् उसके भरण-पोषण का उत्तरदायित्व दूसरे पति पर होता है परन्तु धर्मानुसार जीवन व्यतीत करने पर उसे स्त्रीधन व पति की सम्पत्ति का अधिकार दिया गया जो महिला के प्रति न्याय को प्रदर्शित करता है।

अर्थशास्त्र में वर्णित निम्नलिखित विचार महिलाओं के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार को दर्शाता है कि जो स्त्री रूप यौवना से सम्पन्न एवं गायन-वादन में निपुण हो, चाहे उसका वैश्याकुल से सम्बन्ध हो या न हो, राजकीय अधिकारियों द्वारा उसे गणिका के रूप में नियुक्त कर दिया जाना चाहिए तथा गणिका (वैश्या) के सौन्दर्यहीन हो जाने पर उसे खाला (मातृका) के स्थान पर नियुक्ति दे दी जाए।[16] उपरोक्त सन्दर्भ में शोधकर्त्री का विनम्र अभिमत है कि यहाँ रूपयौवना महिलाओं का दुरुपयोग किया गया है। यदि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं है तो प्रशासन द्वारा उन्हें उपयोगी रोजगारोन्मुख किया जा सकता है, जिससे वह आत्मनिर्भर बन सके। परन्तु गणिकाओं के रूप में नियुक्त कर महिलाओं को स्वावलम्बी बनाना उचित मार्ग नहीं है बल्कि उनके साथ सामाजिक अन्याय को दर्शाता है।

अर्थशास्त्र में राजनीतिक अधिकारों के सम्बन्ध में महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ बताया गया है उन्हें राजकार्य में गुप्तचर के रूप में काम लिया जाता था। क्योंकि महिला अपने सौन्दर्यरूपी बाणों से पहले शत्रु को घायल करती है, तत्पश्चात् उसके जीवन का अन्त कर देती है।[17] अत: महिलाओं का राज्य व अन्तर्राज्य सम्बन्धों में गुप्तचर के रूप में अपने राज्य की सुरक्षा व संवर्धन के सन्दर्भ में अहम् योगदान दृष्टव्य होता है। परन्तु इसके विपरीत मेरे अभिमत में उपर्युक्त संदर्भ इस बात की ओर इंगित करता है कि गुप्तचर के रूप में महिला को नियुक्त कर शत्रु को वश में करने की स्थिति में उसके सौन्दर्य का सदुपयोग नहीं किया गया अपितु उनके प्रति अन्यायपूर्ण स्थिति को प्रकट किया गया है। शत्रु को वश में करने हेतु राजा को साम, दाम, दण्ड व भेद तथा षाड्गुण्य-नीति का प्रयोग करना चाहिए न कि एक महिला को साधन के रूप में प्रयोग करे।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में महिलाओं की सामाजिक जीवन में सहभागिता के संदर्भ में अनेक प्रकार के अतार्किक नियंत्रण देखने को मिलते हैं उनके द्वारा लगाये गये अंकुश से महिलाओं की स्थिति दासी के समान प्रतीत होती है। अर्थशास्त्र में यह अभिव्यक्त किया गया है कि यदि महिलाएँ पति के नियंत्रण के विपरीत कार्य करती है, तो उन्हें दण्डनीय माना गया है[18]। परन्तु भय के कारण घर से भागने पर वह अदण्डनीय है।[19] अत: उपर्युक्त विचार लैंगिक भेदभाव को स्पष्ट करता है। कुछ आचार्यो का मत है कि पति द्वारा तिरस्कृत महिला यदि अपने पति के सम्बन्धी पुरुष रहित घर में जाये, या सुख सम्पन्न, गाँव के मुखिया के घर में जाये तो उसे दोषी नहीं समझना चाहिए।[20] यह तर्क सामाजिक न्याय हेतु सर्वथा निरर्थक प्रतीत होता है क्योंकि पूर्व से भारत

पुरुष प्रधान देश रहा है तथा यह संभव नहीं है कि किसी परिवार में पुरुष नहीं हो, केवल अपवाद की स्थिति को छोड़कर, परन्तु यह कोई मापदण्ड नहीं है कि पुरुष के घर में जाने से स्त्री में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। यहाँ यह स्पष्ट है कि दूसरी महिला किसी पुरुष के यहाँ आश्रय लेती है तो दण्ड का प्रावधान किया गया है तथा महिलाओं का अपने परिवारजनों तथा सगे-सम्बन्धियों से मिलने का अवसर पुरुष की अनुमति पर निर्भर है। अर्थात् उनकी स्वतन्त्रता को प्रतिबंधित किया गया है जो सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से अनुचित है।

विवाह एवं तलाक के सम्बन्ध में अर्थशास्त्र में यह स्पष्ट किया गया है कि 12 वर्ष की लड़की एवं 16 वर्ष का लड़का विवाह के योग्य है। मनु की भाँति ही आठ प्रकार के विवाहों का विधान दिया गया है। प्रथम चार के विवाहों में विवाह-विच्छेद की अनुमति नहीं है, किन्तु अंतिम चार प्रकार के विवाहों में तलाक संभव है। पत्नी अपने पति से जीवन-निर्वाह हेतु राशि माँग सकती है। पत्नी से पुत्र प्राप्ति न होने पर पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है।

अर्थशास्त्र में पुरुष के पुनर्विवाह के संदर्भ में यह विचार व्यक्त किये गये हैं कि किसी स्त्री के संतान न हो, संतान पैदा करने की शक्ति न हो तथा स्त्री द्वारा बार-बार कन्याओं का जन्म देने पर पुरुष को पुनर्विवाह कर लेना चाहिए।[21] उपर्युक्त विचार लिंग आधारित न्याय को स्थापित नहीं करता, क्योंकि संतानोत्पत्ति के लिए स्त्री-पुरुष दोनों ही उत्तरदायी होते है। जीव विज्ञान के अनुसार तो बालक के लिंग निर्धारण का उत्तरदायी पूर्णरूप से पुरुष ही होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र में स्त्रियों को परिस्थितिवश ही पुनर्विवाह व स्त्रीधन का उत्तराधिकारी माना है, जो सामाजिक न्याय के अनुकूल है लेकिन अन्य अधिकतम संदर्भो के गहन अध्ययन से स्त्रियों पर अंकुश की स्थिति प्रतीत होती है। अत: स्त्रियों की प्रति विरोधाभासी दृष्टिकोण देखने को मिलता है।

राजधर्म के अनुशीलन के माध्यम से सामाजिक न्याय

कौटिल्य के अनुसार राजसत्ता के उदय से पूर्व सर्वत्र अराजकता का बोलबाला था। इस मातस्य न्याय से मुक्ति हेतु राजा को मनोनीत किया गया। जो प्रजा को सुरक्षा एवं समृद्धि प्रदान कर सकता है राजा का तिरस्कार करना प्रजा के लिए पाप करने के समान एवं दण्डनीय अपराध है। दूसरी ओर राजा का दायित्व है कि वह प्रजा की रक्षा में कोई त्रुटि न करे, क्योंकि इसी दायित्व को स्वीकार करने पर ही राजा को भाग (कर) दिया जाता है।[22] राजा के सफलशासन के मूल मंत्र है कि वह दूसरों की स्त्रियों एवं सम्पत्ति को नुकसान न पहुँचायें, मिथ्याभिमान जैसी बुराईयों से दूर रहें; सांसारिक आनन्द उठाते समय सदाचार की अवहेलना न करें तथा आत्म संयम रखें। राजा का दायित्व है कि वह आठ प्रकार की दैविय विपत्तियों से प्रजा की रक्षा करे, जैसे-आग, बाढ़, महामारी, दुर्भिक्ष, चूहे, साँप, शेर और भूतप्रेत।[23] राजा को चाहिए कि वह पीड़ित प्रजा की पुत्रवत् रक्षा करे। गुप्तचरों की सहायता से अपराधियों को पकड़ने की विधियों के निर्देश देते हुए विभिन्न प्रकार के अपराधियों के लिए दण्ड निर्धारित करें। राजा न केवल धर्म संरक्षण का उत्तरदायी है अपितु पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहिन, गुरु-शिष्य इत्यादि के सम्बन्धों की पवित्रता की रक्षा का दायित्व भी राजा को ही सौंपा गया है। दरिद्रों, गर्भवती स्त्रियों, नवजात शिशुओं, अनाथों एवं वृद्धों इत्यादि की सहायता करना राजा का धर्म है। सामाजिक न्याय की स्थापना के उद्देश्य से राजा द्वारा विभिन्न प्रजाहितकारी कार्यों को सम्मिलित किया जा सकता है-बीमारियों से रक्षा हेतु औषधालयों की स्थापना करना, अग्नि व बाढ़ से रक्षा करना, नदी किनारे बसे ग्रामों की रक्षा हेतु पूर्व व्यवस्था करना[24], दुर्भिक्ष से प्रजाजनों की रक्षा करना[25], अल्पमूल्य में किसानों को बीज उपलब्ध करवाना[26], समाज में अनैतिकता की रोकथाम हेतु नशीले पदार्थो की बिक्री पर रोक लगाना, असहायों एवं निर्धनों हेतु रोजगार की व्यवस्था करना।

अर्थशास्त्र में सभी व्यवसायों एवं व्यापारियों को राजा के नियंत्रण में रखने का समर्थन किया गया है यहाँ तक कि वैद्य को गंभीर रोगियों के सभी मामलों की सूचना शासन को देनी चाहिए। यदि ऐसी सूचना दिये बिना किसी रोगी की मृत्यु हो जाती है तो वैद्य दण्डनीय होगा।[27] इसी प्रकार स्वर्णकारों, धोबियों एवं जुलाहों हेतु व्यावसायिक नियमों का प्रावधान करना भी राजा का धर्म है।

अत: उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजा द्वारा निर्वाहित समस्त कार्य सामाजिक न्याय की स्थापना पर बल देते हैं। राजा द्वारा सभी वर्णो की सुरक्षा, जिसमें स्त्री, निर्धन, बालक, वृद्ध यहाँ तक नवजात शिशु भी शामिल हैं। यहाँ किसी वर्ण विशेष के संदर्भ में सुरक्षा का प्रावधान नहीं किया गया जो न्यायनिष्ठ समाज की स्थापना हेतु अनिवार्य है।

समुचित करारोपण की नीति के माध्यम से सामाजिक न्याय

कौटिलीय अर्थशास्त्र में समुचित करारोपण के उपाय सुझाये गये हैं जिसके फलस्वरूप राजा द्वारा करों का निर्धारण प्रजा के सामर्थ्य के अनुसार किया जाता है। जिससे अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक न्याय की झलक देखने को मिलती है। कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि राजा को प्रजा पर करों के आरोपण के

समय मनमाना आचरण नहीं अपनाना चाहिए। अपितु मंत्रियों व अमात्यों के परामर्श को स्वीकारना चाहिए। राजा की चाहिए कि वह देश, जाति तथा आचार के अनुसार नये व पुराने प्रत्येक पदार्थ पर कर की व्यवस्था करे।[28] अर्थशास्त्र में स्पष्ट किया गया है कि राजा को कर प्राप्ति का अधिकारी तभी माना जाये जबकि वह प्रजा की सुरक्षा सुनिश्चित करे। यदि वह कर प्राप्ति के बदले प्रजा की रक्षा नहीं करे तो प्रजा कर देने से इन्कार कर सकती है।[29] कौटिल्य ने प्रजा से अनुचित कर संग्रह का स्पष्ट निषेध किया है। उनकी मान्यता है कि राजा को करों की दर अनुचित रूप से नहीं बढ़ानी चाहिए। अर्थात् परम्परा, देश, काल एवं सामर्थ्य को ध्यान में रखकर ही कर संग्रह करना चाहिए।[30] कौटिलीय अर्थशास्त्र में राजा को यह परामर्श दिया गया है कि उसे अकाल, महामारी जैसी विशेष परिस्थितियों में प्रजा को करों में राहत देनी चाहिए, परन्तु यह भी स्पष्ट किया है कि जब राज्य में बाह्य आक्रमण या युद्ध जैसी स्थिति हो तो शासक निर्धारित कर से अधिक मात्रा में भी कर प्राप्त कर सकता है। कौटिल्य में यह मत व्यक्त किया है कि राजा द्वारा कृषि उपज का छठा भाग, महंगे वस्त्रों के मूल्य का 15वाँ भाग एवं मूल्यवान वस्तुओं का कर विषय विशेषज्ञों की सलाह से ग्रहण करना चाहिए।[31] अत: करारोपण की नीति व कर व्यवस्था के विभिन्न पक्षों के विवेचन से स्पष्ट है कि कौटिल्य ने इसके माध्यम से लोककल्याणकारी धारणा का संकेत दिया है तथा कर वसूली के संदर्भ में विवेक सम्मत नीति अपनाने का सुझाव दिया है जिससे राजा अन्यायपूर्वक कर संग्रह नहीं कर सकता यदि वह ऐसा करता है तो उसे प्रजा के प्रतिवाद एवं अपकीर्ति का सामना करना पड़ता है।

सारत: कौटिल्य ने करारोपण की लोककल्याणकारी नीति का प्रतिपादन किया है और जहाँ जनकल्याणकारी उद्देश्य निर्दिष्ट है वहाँ सामाजिक न्याय स्वत: स्थापित हो जाता है।

समुचित दण्ड नीति के माध्यम से सामाजिक न्याय

कौटिलीय अर्थशास्त्र में वर्णित दण्ड व्यवस्था के गहन अनुशीलन से अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक न्याय की झलक देखी जा सकती है क्योंकि दण्ड के भय से प्रजा अपने धर्मानुसार कार्यों में निरन्तर संलग्न रहती है। अर्थशास्त्र में भी महाकाव्यों की भाँति राजा को परामर्श दिया गया है कि वह अपराध की गुरुता के अनुसार ही दण्ड को व्यवहार में ला सकता है। कौटिल्य के अनुसार धर्म की सत्ता के क्रियान्वयन हेतु दण्ड की उत्पत्ति हुई है दण्ड की शक्ति का समुचित रीति से प्रयुक्त करने वाली राज्य सत्ता के अभाव में दुर्बलों की सुरक्षा असंभव है। राजा को दण्ड के माध्यम से दुर्बलों को सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए।[32] दण्ड को धर्म के अनुपालन और शांति व सुरक्षा की सुनिश्चितता के माध्यम के रूप में कौटिल्य ने लिखा है कि दण्ड के माध्यम से ही चारों वर्ण और आश्रम अपने-अपने धर्म में निरत रहते हैं तथा अपने मार्ग पर चलते हैं।[33]

कौटिल्य ने अपराध के अनुपात में दण्ड देने पर बल दिया है वह अधिक कठोर दण्ड को आवश्यक नहीं मानते अपितु यह अभिव्यक्त करते हैं कि दण्ड के सर्वथा अभाव का कुप्रभाव यह होगा कि मतस्य न्याय की दशा कायम हो जायेगी, जिसके फलस्वरूप बलवान, निर्बल का शोषण करता रहता है परन्तु दण्डधारी राजा से रक्षित दुर्बल भी बलवान बना रहता है तथा समस्त लोक अपने-अपने धर्म में प्रवृत्त होकर निरंतर मर्यादित रहते हैं।[34] अर्थशास्त्र में महिला एवं पुरुष दोनों के लिए अपराध की प्रवृत्ति के अनुसार दण्ड का प्रावधान दिया गया है तथा राजनियमों का उल्लंघन करने पर बालिग लड़का-लड़की भी दण्ड के अधिकारी माने गये हैं।[35] परन्तु ब्राह्मण वर्ण को किसी गंभीर अपराध पर भी मृत्युदण्ड दिये जाने का प्रावधान नहीं है।[36]

उपर्युक्त विवेचन निष्पक्ष एवं समान दण्ड प्रणाली का समर्थन करता है जो सामाजिक न्याय के लिए आवश्यक है।

सारत: स्पष्ट है कि कौटिल्य ने ब्राह्मण वर्ण को विशेषाधिकार दिये है परन्तु शूद्र वर्ण की हीनता का प्रतिपादन नहीं किया बल्कि उसे सामुदायिक जीवन का आधार बताया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में महिलाओं के प्रति विरोधाभासी दृष्टिकोण को अपनाया गया है इस प्रकार लैंगिक न्याय एवं अन्याय दोनों की प्रतिपुष्टि होती है। अर्थशास्त्र में राजधर्म के पालन, समुचित कर व्यवस्था एवं दण्ड प्रणाली से सम्बन्धित विवेचन भी सामाजिक न्याय का समर्थन करता है परन्तु ब्राह्मणों को गंभीर अपराध पर भी मृत्यु दण्ड की परिधि से बाहर रखना न्यायोचित नहीं है। इस भेदभाव पूर्ण दण्ड व्यवस्था का विधान इसलिए दिया गया है क्योंकि ब्राह्मण धर्म रक्षक एवं वेदज्ञ के रूप में विख्यात थे तथा उनके जीवन की सार्थकता में जनकल्याणकारी भावना निहित है इसलिए ब्राह्मणों हेतु अदम् साहस के दण्ड की व्यवस्था की गयी।

संदर्भ सूची

1. चतुर्वेदी, ऊषा, प्राचीन साहित्य में राज्य व राजनीति, आरबीएसए पब्लिशर्स, जयपुर, 2005, पृ. 17
2. गाबा, ओमप्रकाश, भारतीय राजनीतिक विचारक, मयूर पेपर बैक्स, पृ. 39
3. उपर्युक्त

4. चतुर्वेदी, उषा, पूर्वोक्त
5. उपर्युक्त, पृ. 21
6. उपर्युक्त
7. कौटिलीय अर्थशास्त्र, व्याख्याकार वाचस्पति गैरोला, चौखंभा विद्या भवन, वाराणसी (2013), पृ. 10
8. एम.वी. कृष्णाराव उद्धृत श्रीराम वर्मा, भारतीय राजनीतिक विचारक, पृ. 71
9. बन्धोपाध्याय उद्धृत श्रीराम वर्मा; भारतीय राजनीतिक विचारक, पृ. 71
10. कौटिलीय अर्थशास्त्र, व्याख्याकार वाचस्पति गैरोला, प्रथम अधिकरण, अध्याय-2, चौखंभा विद्या भवन, वाराणसी (2013), पृ. 111
11. उपर्युक्त, प्रकरण-60, श्लोक-2, पृ. 272
12. उपर्युक्त, प्रकरण-59, श्लोक-4, पृ. 277
13. उपर्युक्त, प्रकरण-59, श्लोक-5, पृ. 267
14. उपर्युक्त, प्रकरण-58, श्लोक-4, पृ. 262
15. उपर्युक्त, प्रकरण-58, श्लोक-2, श्लोक-1, पृ. 263
16. उपर्युक्त, प्रकरण-4, श्लोक-1, पृ. 207
17. उपर्युक्त, प्रकरण-89, श्लोक-3, पृ. 408
18. उपर्युक्त, प्रकरण-60, अध्याय-3, श्लोक-2, पृ. 270
19. उपर्युक्त, प्रकरण-60, अध्याय-4, श्लोक-1, पृ. 270
20. उपर्युक्त, प्रकरण-60, अध्याय-4, श्लोक-4, पृ. 270-271
21. उपर्युक्त, प्रकरण-58 अध्याय-2, श्लोक-6, पृ. 264
22. गाबा, ओमप्रकाश; भारतीय राजनीतिक विचारक; मयूर पेपर बैक्स, पृ. 41
23. कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रकरण-78, श्लोक 1-4,पृ. 356-357
24. उपर्युक्त, प्रकरण-78, श्लोक-5, पृ. 356
25. उपर्युक्त, प्रकरण-78, श्लोक-7, पृ. 357
26. उपर्युक्त, प्रकरण-78, श्लोक-7, पृ. 357
27. उपर्युक्त, प्रकरण-76, श्लोक-3, पृ. 350
28. उपर्युक्त, अधिकरण-2, श्लोक-2, पृ. 191
29. उपर्युक्त, अधिकरण-2, श्लोक-2, पृ. 188
30. उपर्युक्त, अधिकरण-2, श्लोक-2, पृ. 189
31. उपर्युक्त, अधिकरण-2, श्लोक-3, 4, 5, पृ. 189
32. उपर्युक्त, अधिकरण-2, श्लोक-17, पृ. 18
33. उपर्युक्त, अधिकरण-2, अध्याय-1, श्लोक-4, पृ. 19
34. उपर्युक्त, अधिकरण-2, अध्याय-1 श्लोक-4, पृ. 15, 16, 17
35. उपर्युक्त, अधिकरण-2, अध्याय-3, श्लोक-5, पृ. 1
36. उपर्युक्त, अधिकरण-2, अध्याय-3, श्लोक-8, पृ. 32-38